हमें मस्तिष्क के बारे में कैसे पता चला?

आइसक एसिमोव

हिन्दी अनुवादः अरविन्द गुप्ता

हमें मस्तिष्क के बारे में कैसे पता चला?

आइसक एसिमोव

हिन्दी अनुवाद: अरविन्द गुप्ता

1 खोपड़ी के नीचे

मस्तिष्क के नीचे एक मुलायम सिलेटी रंग का पदार्थ होता है जिसका भार डेढ़ किलो होता है। वो थोड़ा सिकुड़ा होता है और देखने में एक बड़े अखरोट जैसे दिखता है। यही मस्तिष्क है।

ऐसा लगता है जैसे मस्तिष्क कुछ करता ही नहीं। वो बस वहां बैठा रहता है। पर क्योंकि हड्डी की बनी खोपड़ी उसकी हिफाजत करती है इसलिए मस्तिष्क बहुत महत्वपूर्ण होगा। शरीर के सभी अंगों में मस्तिष्क सबसे अधिक सुरक्षित है।

हृदय भी शरीर का एक महत्वपूर्ण अंग है। उसके आगे हड्डियों का एक पिंजड़ा होता है। परन्तु पसलियों के पिंजड़े के बीच से हृदय में चाकू घुसाया जा सकता है जिससे इंसान तुरन्त मर सकता है। पर खोपड़ी में ऐसा कोई छेद नहीं होता है।

शरीर को हवा में पाई जाने वाली गैस – आक्सीजन की लगातार आवश्यकता होती है। हम हमेशा सांस लेते हैं जिससे कि हमारे शरीर में आक्सीजन प्रवेश कर सके। आक्सीजन, भोजन के साथ मिलकर हमें ऊर्जा देती है।

माँसपेशियों को आक्सीजन की बहुत जरूरत होती है क्योंकि वो बहुत ऊर्जा का उपयोग करती हैं। दौड़ते या वजन उठाते समय या लकड़ी काटते समय हम हाँफने लगते हैं और माँसपेशियों का बहुत इस्तेमाल करते हैं। तब हम बहुत तेजी से साँस लेते हैं जिससे कि शरीर को अधिकतम आक्सीजन की मात्रा मिल सके।

साँस ली हुई आक्सीजन का एक-चौथाई भाग केवल निठल्ला बैठा मस्तिष्क उपयोग करता है। शरीर के बाकी अंग आक्सीजन के बिना कुछ समय तक कार्य कर सकते हैं परन्तु मस्तिष्क की आक्सीजन सप्लाई बंद होने के बाद इंसान केवल कुछ मिनटों तक ही जीवित रहेगा। कुछ मिनटों बाद मस्तिष्क अपना काम करना बंद कर देगा और व्यक्ति मर जाएगा।

प्राचीन काल में लोगों को यह पता नहीं था कि आक्सीजन, मस्तिष्क के लिए बेहद महत्वपूर्ण है। उन्हें इतना पता था कि अगर सिर पर तेज चोट लगे तो कुछ समय के लिए व्यक्ति स्तम्भित हो जाता था और उसके बाद से उसका बर्ताव अलग हो जाता था। उसका सोच और बर्ताव गड़बड़ा जाता था।

प्लेटो और अरस्तू

इसी कारणवश प्राचीन काल में कुछ विद्वान लोग इस निर्णय पर पहुंचे कि मस्तिष्क ही सोच और भावनाओं का केंद्र होगा। प्लेटो (427-347 ई पू) का भी ऐसा ही मत था।

अरस्तू (384-322 ई पू) प्लेटो का सबसे प्रभावशाली छात्र था। अरस्तू के अनुसार हृदय सोच और भावनाओं का केंद्र था। क्योंकि जब आप उत्तेजित होते हैं तो दिल तेजी से धड़कता है और आराम करते समय हृदय भी धीमे धड़कता है। पर अगर हृदय, सोचने और भावनाओं का काम करता है तो फिर मस्तिष्क का क्या रोल है?

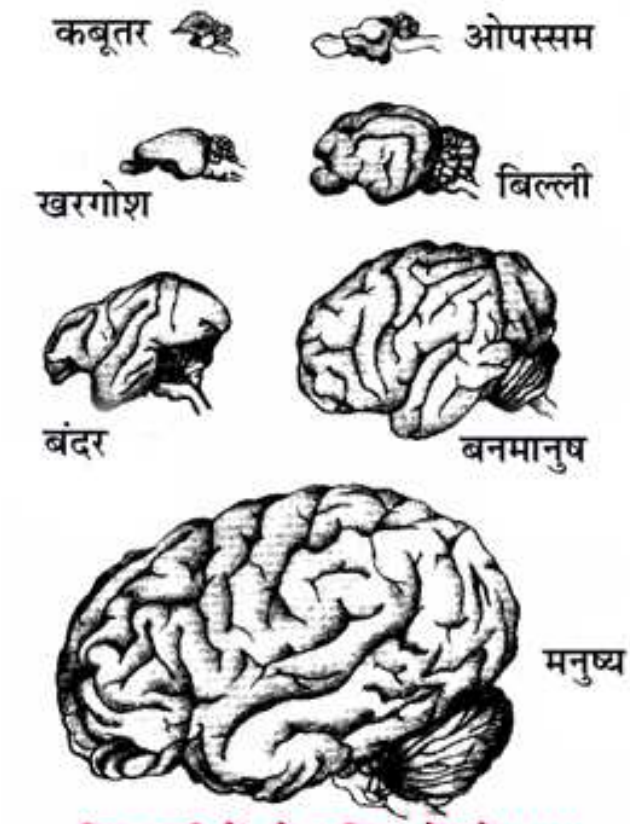

भिन्न जीवों के मस्तिष्कों के माप

अरस्तू के अनुसार हृदय में रक्त गर्म होता था और मस्तिष्क रक्त को ठंडा करने का स्थान था।

पर अगर मस्तिष्क का काम सिर्फ खून को ठंडा करना था तो फिर वो हड्डी की खोपड़ी की सुरक्षा की क्या जरूरत थी? सिर पर लगी चोट, सीने पर लगी चोट से ज्यादा घातक क्यों होती है? मनुष्यों का मस्तिष्क अन्य जानवरों की अपेक्षा इतना अधिक बड़ा क्यों होता है? घोड़े और ऊँट, इंसान की अपेक्षा कहीं बड़े होते हैं पर उनके मस्तिष्क इंसान से छोटे होते हैं। केवल हाथियों और व्हेलों के मस्तिष्क इंसान से बड़े होते हैं।

इन कारणों से मस्तिष्क को लेकर कई विद्वानों का अरस्तू से मतभेद था। वैसे एक चोटी के दार्शनिक के रूप में अरस्तू की बहुत ख्याति थी।

ई पू 290 में एक यूनानी डाक्टर हीरोफिलस ने पहली बार छात्रों के सामने मृत शरीरों को काट कर उनका अध्ययन किया। इसको अंग-विच्छेदन (डिसेक्शन) कहते हैं।

इस प्रकार छात्र शरीर के विविध अंगों का अध्ययन कर सकते थे। शरीर रचना संबंधी अध्ययन के इस विज्ञान को 'ऍनाटॉमी' नाम दिया गया।

हीरोफिलस ने मस्तिष्क का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया और प्लेटो की भांति वो भी इसी निर्णय पर पहुंचा कि मस्तिष्क ही सोचने और भावनाओं का केंद्र था। उसने पाया कि अनेकों लम्बे धागे मस्तिष्क को जोड़ते थे। हम इन्हें 'नर्वस' कहते हैं।

हीरोफिलस ने पाया कि कुछ नर्वस, माँसपेशियों, आंखों और कानों से जाकर जुड़ती थीं। उससे उसने निर्णय निकाला कि कुछ नर्वस माँसपेशियों को संचालित करती होंगी और कुछ के कारण हम देख और सुन पाते होंगे।

हीरोफिलस के बाद एक और यूनानी डाक्टर इरुहसिटरूटस (304-250 ई पूं) ने भी मस्तिष्क का अध्ययन किया। उन्होंने पहली बार मस्तिष्क की सतह पर पाई झिर्रियों और सिलवटों का वर्णन किया। आज हम उन्हें 'कान्वल्यूशंस' कहते हैं। उन्होंने यह भी लिखा कि मनुष्य के मस्तिष्क में अन्य जानवरों की अपेक्षा कहीं अधिक सिलवटें होती हैं। उन्हें लगा कि शायद इसी कारणवश मनुष्य, जानवरों की अपेक्षा ज्यादा बुद्धिमान होते हैं।

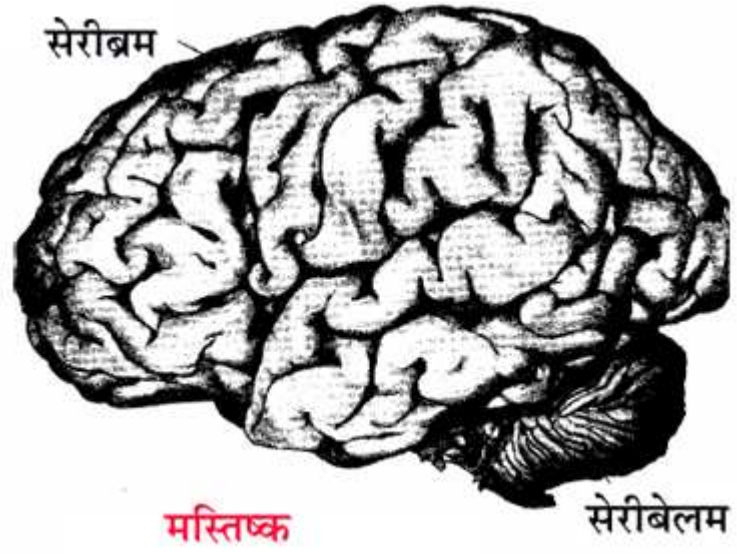

उसने देखा कि मस्तिष्क के दो भाग थे। सामने वाला भाग बड़ा होता है और उसे 'सेरीब्रम' कहते हैं। पीछे की ओर छोटा भाग होता है जिसे 'सेरिबेलम' कहते हैं। उसने मस्तिष्क पर चढ़ी झिल्ली और बीच के रिक्त स्थानों का भी अध्ययन किया।

हीरोफिलस और इरुहसिटरूटस ने अपना काम एलिगजैंड्रिया, मिस्त्र में किया जो उस समय विज्ञान का केंद्र था। परन्तु मिस्त्रवासियों ने 'डिसेक्शन' (काट-छांट) पर आपत्ति जताई। वो उनके धर्म के खिलाफ था। इस कारण से इन दोनों डाक्टरों द्वारा शुरू करा सुंदर शोध वहीं पर ठप्प पड़ गया।

उस समय रोम साम्राज्य अपनी चरम शिखर पर था। यूनान में एक और नामी-गिरामी डाक्टर थे जिनका नाम था गेलेन (130-200)। क्योंकि मनुष्यों के शवों के काटने-छांटने पर मनाही थी इसलिए उन्होंने मरे जानवरों का 'डिसेक्शन' शुरू किया। इसमें कभी-कभी वो मुश्किलों में भी फंस गए क्योंकि कुत्तों ओर सुअरों के अंग अक्सर मनुष्यों जैसे नहीं होते।

गेलेन ने मस्तिष्क के अन्य भागों का भी अध्ययन किया। सेरिबेलम के पीछे मस्तिष्क सकरा होकर 'मेडुला ओबलांगाटा' बनाता है। यह भाग रीढ़ की हड्डी से सुरक्षित रहता है। इस पूंछ को 'स्पाइनल कार्ड' या मेरूदंड कहते हैं और उसके साथ तमाम नर्वस जुड़ी होती हैं जो अंततः मस्तिष्क से जाकर जुड़ती हैं।

अगर किसी जानवर का मेरूदंड काट दिया जाए तो क्या होगा? गेलेन ने इस प्रश्न का अध्ययन किया। अगर वो मस्तिष्क के पास ऊपर की ओर काटता तो जानवर तुरन्त मर जाता। पर अगर मेरूदंड को नीचे और नीचे काटता तो अलग-अलग माँसपेशियां काम करना बंद कर देतीं और जानवर को लकवा मार जाता। इससे इतना तो पक्का हुआ कि मेरूदंड से जुड़ी नर्वस विभिन्न माँसपेशियों को नियंत्रित करती थीं।

दुर्भाग्यवश, रोम में विज्ञान पिछड़ने लगा। रोम साम्राज्य के गिरने के बाद विज्ञान का स्तर और गिरा। गेलेन के 1000 वर्ष बाद ही वैज्ञानिकों ने दुबारा शरीर-रचना को समझने के लिए जानवरों और इंसानों के मृत शरीरों का डिसेक्शन शुरू किया।

1316 में एक इतालवी डाक्टर मौनडिनो डे लूटसी (1275-1326) ने शरीर-विज्ञान पर एक संपूर्ण किताब लिखी। वो इतिहास में एनॉटमी विषय पर लिखी पहली पुस्तक थी। उसमें बहुत सारी गल्तियां भी थीं जिनका कारण था कि उसने खुद काट-छांट का काम कम किया और गेलेन के लेखों पर अधिक विश्वास किया। पर फिर भी यह एक अच्छी शुरुआत थी।

अपनी कलाकृतियों को वास्तविक बनाने के लिए इतालवी चित्रकार लियोनार्डो द विन्सी (1452-1519) ने कम-से-कम 30 मृत शरीरों की काट-छांट की और शरीर के अंगों का बारीकी से अध्ययन किया। उसके अवलोकनों से गेलेन की कई गल्तियां उजागर हुईं।

लियोनार्डो ने अपनी खोजों को दर्ज तो किया पर इस रूप में नहीं जिससे

कि अन्य लोग उससे सीख सकें। उसने अपने अवलोकन और नोट्स खुद अपने ही लिए रखे और वो बहुत बाद में ही मिले।

असल में नवीन ऍनाटेमी (शरीर-विज्ञान) की नींव रखने का श्रेय एक बेल्जियन वैज्ञानिक एनड्रियास वेसेलस (1514-1564) को जाता है। लियोनार्डो की तरह ही वेसेलस ने अनेक मृत देहों का डिसेक्शन किया। और उसने अन्य लोगों के पढ़ने के लिए उनके सटीक वर्णन लिखे। 1543 में उसने विज्ञान की एक बेहद महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की। अंग्रेजी में उसका शीर्षक है 'ऑन द स्ट्रक्चर ऑफ द हयूमन बॉडी'। अपने जमाने के सर्वश्रेष्ठ चित्रकार से वेसेलस ने पुस्तक के चित्र बनवाए। तब तक छापाखानों का आविष्कार हो चुका था। यह छपी पुस्तक संपूर्ण यूरोप के पढ़े-लिखे लोगों तक पहुंची। पुस्तक के वर्णन बहुत सटीक थे और उसमें गेलेन की लगभग सभी त्रुटियां सुधार दी गईं थीं।

वेसेलस ने मस्तिष्क का बहुत सजीव और सही वर्णन लिखा था। उसने गेलेन द्वारा किए रीढ़ की हड्डी वाले प्रयोगों को दोहराया। उससे वो इस निर्णय पर पहुंचा कि मस्तिष्क, मेरूदंड, रीढ़ की हड्डी और नर्वस सब मिलजुल कर 'नर्वस सिस्टम' बनाते हैं।

वेसेलस के बाद लोगों ने भयमुक्त होकर मृत शरीरों की काट-छांट शुरू की और साथ-साथ हरेक अंग का विस्तार और स्पष्टता से वर्णन भी लिखा। कई शोधकर्ताओं ने नर्वस को ध्यान से देखा कि वो कहां से कहां जाती हैं।

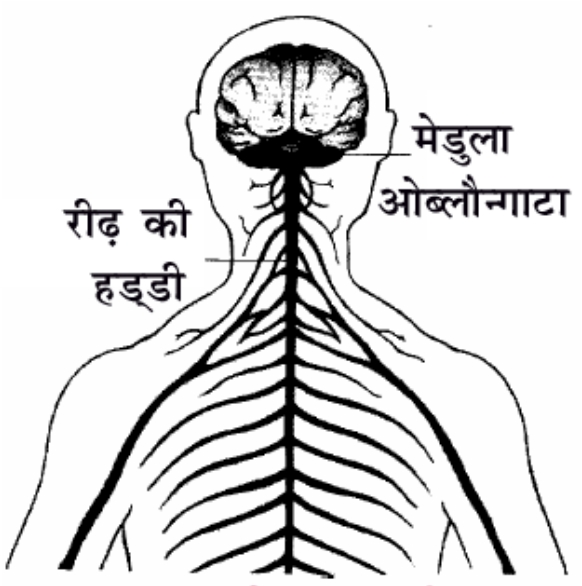

मस्तिष्क से जुड़ी नर्वस

एक स्विस जीव-वैज्ञानिक एल्ब्रेख्त फॉन हैलर (1708-1777) ने पाया कि माँसपेशियां छूने से सिकुड़ जाती हैं। जब हैलर किसी माँसपेशी से जुड़ी नर्व को छूता तो वो सिकुड़ जाती। दरअसल नर्व, माँसपेशी की अपेक्षा अधिक उत्तेजनशील थी। नर्व को हल्के से छूने से तुरन्त माँसपेशी सिकुड़ जाती थी। हैलर के काम से एक बात साफ स्पष्ट हो गई कि नर्वस मस्तिष्क से जुड़ी होती हैं और उनसे शरीर की क्रियाएं संचालित होती हैं।

इसके अलावा हैलर ने यह भी दिखाया कि शरीर की सभी नर्वस मस्तिष्क या मेरूदंड से जुड़ी होती हैं। और क्योंकि मस्तिष्क और मेरूदंड आपस में जुड़ी होती हैं इससे स्पष्ट होता है कि शरीर में केवल एक ही नर्वस सिस्टम है।

2 मस्तिष्क के साथ समस्या

मस्तिष्क और मेरूदंड ही शरीर की क्रियाएं और इंद्रियों को नियंत्रित करती हैं। यह साफ होने पर लोग अटकले लगाने लगे कि अगर मस्तिष्क सुचारू रूप से काम न करे तो फिर क्या होगा? मस्तिष्क का संचालन बिगड़ने, या कोई बीमारी होने पर क्या होगा?

मस्तिष्क के काफी हद तक काम बंद करने पर व्यक्ति अचानक बेहोश भी हो सकता है। इसे पक्षघात या 'स्ट्रोक' कहते हैं। 'स्ट्रोक' शब्द ग्रीक के एपौपलेक्सी से आया है - जिसका मतलब होता है 'मारना'।

'स्ट्रोक' से इंसान की मृत्यु भी हो सकती है। और जिंदा बचने पर शरीर के किसी भाग को लकवा मार सकता है, जिससे वो अंग अब हिलने-डुलने में असमर्थ हो जाएगा। अब हम जानते हैं कि मस्तिष्क में रक्त की किसी शिरा में अवरोध या फटना 'स्ट्रोक' का एक आम कारण है। इस कारणवश मस्तिष्क के उस भाग को ऑक्सीजन मिलना बंद हो जाती है और वो मर जाता है।

अक्सर मस्तिष्क के विकार इतने गम्भीर नहीं होते। कुछ लोगों के अंग बिना उनकी इच्छा के हिलने-डुलने, कांपने लगते हैं। फिर अचानक लोग गिर जाते हैं, और उनका शरीर तेजी से कांपने लगता है और मुंह में झाग और तरह-तरह की आवाजें निकलने लगती हैं। उन्हें अजीबोगरीब चीजें दिखाई और सुनाई पड़ती हैं जिनसे सामान्य लोग अपरिचित होते हैं। इसे आजकल हम 'हेल्यूसिनेशन' या भम्र कहते हैं।

पुराने जमाने में लोग का मानना था कि 'हेल्यूसिनेशन्स' वाला व्यक्ति कोई अदृश्य संसार को देख-सुन रहा होगा। शायद वो भगवान के संदेश सुन रहा हो। शायद भगवान उसके शरीर पर कब्जा कर उसे तेजी से हिला-डुला रहा हो।

यह तब और भी सच लगता था जब लोग गिरकर अजीबो-गरीब हरकतें करने लगते थे और फिर ठीक होने के बाद दुबारा पूणत: सामान्य लगने लगते थे। इसे अक्सर 'गिरने वाली बीमारी' भी कहते हैं। चिकित्सा जगत में इसे एपिलेप्सी (ग्रीक शब्द) या मिर्गी का दौरा कहते हैं। बीमारी के दौरान लगता था जैसे भगवान ने उस व्यक्ति के शरीर पर कब्जा कर लिया हो।

प्राचीन काल में यूनानी मिर्गी के दौरे को एक धार्मिक रोग मानते थे। और

जिन लोगों को मिर्गी का दौरा आता उन्हें लोग बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे। लोग मानते थे कि ऐसे लोगों में भविष्य में देखने की क्षमता होगी और इसलिए उन्हें संतों का दर्जा दिया जाता था।

इस प्रकार जिस इंसान का व्यवहार असमान्य होता – जिसकी भाषा या बर्ताव को लोग समझ नहीं पाते उस व्यक्ति को बहुत आदर की दृष्टि से देखा जाता था। बाद में इन्हीं लोगों को 'पागल' या 'सिरफिरा' बताया गया। ऐसा माना गया जैसे उनका शरीर किसी दैवीय शक्ति से ग्रस्त हो।

जब तक मिर्गी के दौरे और पागलपन को दैवीय शक्ति का प्रकोप माना गया, तब तक ऐसे मरीजों के साथ लोगों ने प्रेम का व्यवहार किया। पर समय गुजरने के साथ लोग मानने लगे कि भगवान नहीं वरन किसी भूत-प्रेत ने मिर्गी के रोगियों के शरीर पर नियंत्रण किया है। इसलिए उपचार के लिए उस भूत-प्रेत को रोगी के शरीर से निकालना जरूरी होगा।

अक्सर भूत-प्रेत को भगाने के तरीके बहुत क्रूर और जालिम होते थे। पागल समझे जाने वाले लोगों को जमकर पीटा जाता, उन्हें जंजीरों से बांधा जाता और अन्य बदतर तरीकों से सताया जाता था। फिर उन्हें पागलखानों की कोठरियों में बंद रखा जाता जहां उनकी हालत और भी खराब होती। सामान्य लोग अक्सर इन पागलखानों में पागलों को देखने के लिए जाते। इससे सामान्य लोगों का अच्छा खासा मनोरंजन होता।

हिपोक्रैटिस

क्या मानसिक रोग का कारण देवी-देवता अथवा भूत-प्रेत से होता है? कुछ लोग इस बात पर विश्वास नहीं करते थे। हर शताब्दी में कुछ ऐसे डाक्टर होते हैं जो पागलपन को एक बीमारी समझते हैं। पागलों को मारने-पीटने की बजाए वो उनके साथ प्रेम का बर्ताव करने की सलाह देते हैं। यूनानी डाक्टर हिपोक्रैटिस (460-370 ई पू) और उनके अनुयायियों ने मिर्गी के दौरे को अन्य बीमारियों की तरह ही एक रोग बताया। उनके अनुसार मिर्गी का दौरा प्राकृतिक कारणों से होता था और उसका उपचार प्रार्थनाओं और प्रताड़नाओं से नहीं, बल्कि दवाईयों से ही सम्भव था।

एक अन्य यूनानी डाक्टर सोहरनस का भी इस मत में विश्वास था। वो रोम में रहते थे और उन्होंने अनेक प्रकार के मानसिक रोगों का वर्गीकरण किया था।

पर लोगों ने तर्क पर आधारित मत को नजरंदाज किया और 'भूत-प्रेतों' पर उनका विश्वास टिका रहा।

1789 में फ्रेंच लोगों ने फ्रांस की बेईमान और लचर सरकार के खिलाफ बगावत का बिगुल बजाया जो फ्रेंच-क्रांति के नाम से जाना गया। उसके कुछ साल बाद क्रांतिकारी नेता कई नई चीजें आजमाने को तैयार हुए जिसमें माप-तौल की नई प्रणाली और एक नया कैलेंडर शामिल था।

साथ में वे पागलों का नए तरीके से इलाज करने के लिए भी तैयार हुए। एक फ्रेंच डाक्टर फिलिप पीनेल (1745-1826) ने भी हिपोक्रैटिस और सोहरनस के समान ही मानसिक विकारों का अध्ययन किया था। वो भी इस प्रकार के रोगियों के दवा द्वारा उपचार के पक्ष में थे।

फिलिप पीनेल

विश्वास-उपचार (फेथ-हीलिंग)

1793 में पीनेल ने एक बड़े मेन्टल (मानसिक) अस्पताल का कार्यभार सम्भाला। वहां अधिकांश रोगी कई सालों से जंजीरों से बंधे थे। पीनेल ने उनकी जंजीरे खोलीं, उनके शरीर की सफाई की जिससे उन्हें आराम पहुंचे। उसने हरेक रोगी का अगर रिकार्ड रखा जिसमें वो उनकी प्रगति को दर्ज करता। ऐसा करने से मानसिक रोगियों की हालत में बहुत सुधार हुआ।

पीनेल ने मानसिक रोगियों के इलाज का एक नया सूत्रपात किया, परन्तु हालात धीरे-धीरे ही बदले। पीनेल की देखा-देखी इंग्लैन्ड, जर्मनी और अमरीका में मानसिक रोगियों के इलाज में भी बदलाव आया 1800 के अंत तक सभ्य जगत में इलाज के पुराने क्रूर तरीके लुप्त हो गए।

पर मानसिक रोगियों का उपचार कैसे किया जाए? अगर मस्तिष्क अच्छी तरह से कार्य न करे तो क्या किसी तरीके से उसे ठीक किया जा सकता था?

हमारे आसपास का जगत दृश्यों, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्श आदि से भरा होता है। इनमें से कई चीजें मस्तिष्क तक पहुंचकर उसे चैन पहुंचा सकती है अथवा उसे बदल सकती हैं। अगर मरीज का किसी विशिष्ट इलाज में विश्वास है तो वो इलाज उसे अवश्य आराम पहुंचाएगा।

मान लें एक व्यक्ति की कोई समस्या है। एक मित्र उसे उपचार के बारे एक विशेष गंडा (धागा) देता है या कहता है कि उससे भगवान अथवा भूत-प्रेत उसे बचाएंगे। फिर मित्र बीमार व्यक्ति के सामने कुछ ऊल-जलूल शब्द बकता है, अपना हाथ हिलाता है या उसे छूता है। अगर रोगी का उस तंत्र में विश्वास होगा तो उसको उससे अवश्य लाभ होगा - और कभी-कभी ऐसा होता भी है। इसे विश्वास-उपचार या 'फेथ-हीलिंग' कहते हैं।

जैसे-जैसे समय बीतता गया और लोग शरीर के कार्य को बेहतर समझने लगे, वैसे-वैसे 'फेथ-हीलिंग' का जादू कम होता गया। अब लोग वैज्ञानिक पद्धति से उपचार चाहते थे।

1700 में वैज्ञानिक चुम्बकों और विद्युत की कार्यविधि को समझ रहे थे। चुम्बक और विद्युत दोनों ही चीजों को आकर्षित कर सकते थे। लोगों को लगा कि चुम्बकों और विद्युत की मदद से रोग को बीमार व्यक्ति के शरीर के बाहर खींच पाना सम्भव होगा।

1774 के करीब, ऑस्ट्रिया में बसे एक जर्मन डाक्टर फ्रैंज एन्टोन मेस्मर (1734-1815) ने यही करने का प्रयास किया। उसने रोगी के शरीर के ऊपर चुम्बक लगा कर बीमारी को बाहर खींचने की कोशिश की। पर चुम्बक से कोई फर्क नहीं पड़ा। यह उपचार 'फेथ-हीलिंग' का एक उदाहरण था।

मेस्मर ने पाया कि चुम्बक को अलग रखकर वो मरीज के शरीर के ऊपर सिर्फ अपने हाथ को फिरा सकता था। परन्तु उससे रोगियों को कोई राहत नहीं मिली और उन्होंने पुलिस से जाकर मेस्मर की शिकायत की। उसके कारण मेस्मर को ऑस्ट्रिया छोड़ना पड़ा। 1778 में वो पेरिस गया।

कुछ समय तक मेस्मर पेरिस में काफी सफल रहा, पर फिर वहां भी वही हुआ और 1785 में उसे पेरिस छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा।

मेस्मर पूरी तरह से धोखेबाज नहीं था। वो बस बहुत उत्साही था और उसे लगता था कि अपने तरीके से सभी मर्जों का इलाज कर पाएगा। उसके बाद से बहुत लोगों ने मेस्मर की पद्धति यानि 'मेस्मरिज्म' को जारी रखा।

1841 में एक स्काटिश डाक्टर जेम्स बायर्ड (1795-1860) ने एक प्रदर्शनी में पहली बार 'मेस्मरिज्म' को देखा। क्या इसमें कुछ सच्चाई है? वो सोचने लगे। जिन रोगियों को उससे आराम मिला था शायद उनके मस्तिष्क पर उसने कुछ असर जरूर किया होगा।

फ्रैंज एन्टोन मेस्मर

उसने कई प्रयोग किए और पाया कि अगर मरीज अरुचिपूर्ण और बार-बार होने वाली उत्तेजना पर अपना ध्यान केंद्रित करता है तो उससे मरीज का दिमाग थक जाता है और वो ध्यान देना बंद कर देता है। इस प्रकार मरीज एक तरह की नींद से ग्रसित होता है और उसे अपने आसपास की कई घटनाओं का कुछ पता नहीं चलता है। बायर्ड ने उसे 'हिप्नोटिज्म' का नाम दिया। ग्रीक में 'हिप्नोटिज्म' का मतलब 'नींद' होता है।

दरअसल 'हिप्नोटिज्म' नींद नहीं थी क्यों हिप्नोटाइज्ड व्यक्ति कही हुई बात को अच्छी तरह सुन सकता था। चेतन मन के सोने के बाद भी अचेतन मन नए विचारों को ग्रहण करने के लिए तैयार रहता था। अचेतन मन, चेतन मन की अपेक्षा विचारों में गहरा विश्वास करता था।

इसलिए अगर किसी रोग का दिमागी सुझावों द्वारा उपचार सम्भव हो तो हिप्नोटाइज्ड व्यक्ति पर उसका गहरा प्रभाव होगा। अब डाक्टर 'हिप्नोटिज्म' द्वारा मानसिक रोगों का उपचार करने लगे थे।

उनमें एक ऑस्ट्रियन डाक्टर थे जोजेफ ब्रोयर (1842-1925)। 1880 में उन्होंने पाया कि हिप्नोटाइज्ड व्यक्ति को वो तमाम घटनाएं याद रहती हैं जिन्हें सामान्य स्थिति में वो भूल जाता है।

अचेतन विचारों और यादों के कारण मरीज अजीबो-गरीब तरह के बर्ताव करने लगता है। ब्रोयर का विश्वास था कि अगर हिप्नोटाइज्ड स्थिति में मरीज को यह सब विचार और बातें बताई जाएं तो शायद सामान्य स्थिति में भी उसे वे बातें याद रहेंगी और उससे उसके अजीबोगरीब व्यवहार में परिवर्तन आएगा।

ब्रोयर ने इसे इसकी चर्चा एक अन्य ऑस्ट्रियन डाक्टर सिगमंड फ्रायड (1856-1939) के साथ की। 1887 में फ्रायड ने अपने मरीजों पर 'हिप्नोटिज्म' का परीक्षण किया और उन्हें सफलता भी मिली। 1890 में उन्हें 'हिप्नोटिज्म' के उपयोग की जरूरत महसूस नहीं हुई। उन्होंने अपने मरीजों को मुक्त रूप से

बोलने को कहा - जिससे एक बात से उसे दूसरी बात याद आई और यह सिलसिला बढ़ता गया। इसे 'फ्री-एसोसिएशन' या मुक्त-संयोजन कहते हैं और इससे दबी और सुप्त यादें अंततः बाहर आ जाती हैं।

फ्रायड को यह भी लगा कि जब सोते समय चेतन दिमाग का नियंत्रण नहीं होता है तब दबी, छिपी यादें सपनों में भी प्रस्फुटित होती हैं। सपनों को याद रखना उन्हें महत्वपूर्ण लगा जिससे कि उनका विश्लेक्षण किया जा सके। फ्रायड के तरीके को 'साईको-एनालिलिस' कहते हैं। ग्रीक में इसका मतलब होता है 'दिमाग को विभक्त करना'। फ्रायड के कार्य का मानसिक रोगियों की चिकित्सा पर गहरा असर हुआ। धीरे-धीरे करके भिन्न लोगों ने 'साईको-एनालिलिस' की अलग-अलग धाराएं शुरू कीं।

मंद और कम उपचार से भी मानसिक रोगी अक्सर बहुत उत्तेजित और खतरनाक हो जाते हैं। फिर उनके हाथ-पैर बांधकर उन्हें सुलाने के लिए ताकतवर दवाएं दी जाती हैं।

1952 में एक नए प्रकार की दवाई का इजाद हुआ जिन्हें 'ट्रैंक्यूलाइजर' कहते हैं। इससे व्यक्ति सोए बिना भी एकदम शांत हो जाता है। इन दवाओं से उत्तेजित मानसिक रोगियों का उपचार आसान हुआ।

3 मस्तिष्क की कोशिकाएं (सेल्स)

1700 तक मस्तिष्क की संरचना का पता चल चुका था। परन्तु उन तमाम बारीकियां का क्या जिन्हें आंखों से नहीं देखा जा सकता था? उसके लिए माइक्रोस्कोप या सूक्ष्मदर्शी की जरूरत पड़ी।

1665 में एक अंग्रेज वैज्ञानिक रार्बट हुक (1635-1703) ने अपने सूक्ष्मदर्शी को कार्क की एक पतली परत पर केंद्रित (फोकस) किया। कार्क पेड़ की छाल और एक मृत पदार्थ होती है। वैसे आंख से देखने पर कार्क ठोस नजर आती है परन्तु सूक्ष्मदर्शी के नीचे उसमें आयताकार छेदों के नमूना नजर आते हैं। हुक ने इन छेदों को 'सेल्स' या कोष्ठ अथवा कोठरियों का नाम दिया।

अन्य वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मदर्शी से जीवित पदार्थों का भी अध्ययन किया। जर्मन जीव-शास्त्री मैथायस जेकब शेलडेन (1804-1881) ने पाया कि पौधों के ऊतक (टिश्यू) भी छोटे-छोटे कोष्ठों के बने थे और एक-दूसरे से चारदीवारियों से अलग थे। वे हुक के 'सेल्स' जैसे ही थे, फर्क बस इतना था कि वे गाढ़े तरल से भरे थे। वैसे 'सेल' शब्द का उपयोग रिक्त चीजों के लिए करना चाहिए परन्तु शेलडेन ने पौधों में पाए ढांचों को 'सेल्स' का ही नाम दिया। पौधे की टिश्यू मरने के बाद पेड़ की बाहरी छाल बनती है। उसके 'सेल्स' अब रिक्त हो

जाते हैं और उनमें बस छिद्र दिखते हैं जैसा कि हुक ने देखा था।

1938 में शेलडेन इन निर्णय पर पहुंचा - पौधे छोटे 'सेल्स' के बने होते हैं जिन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है।

एक अन्य जर्मन जीव-शास्त्री थियोडोर श्वान (1810-1882) ने जानवरों की पतली टिश्यूज का अध्ययन किया। यहां भी उसे छोटे अलग-अलग ढांचे दिखे जो एक-दूसरे से दीवारों द्वारा अलग थे। 1839 में श्वान भी इसी निर्णय पर पहुंचे कि जानवर भी सूक्ष्म 'सेल्स' के बने होते हैं जिन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है।

इस प्रकार शेलडेन और श्वान ने 'सेल थ्योरी' का सूत्रपात किया। इसके अनुसार सभी जीव 'सेल्स' के बने होते हैं। कुछ सूक्ष्मजीवी और पौधे मात्र एक-सेल के बने होते हैं। दूसरी ओर मनुष्यों में अरबों-खरबों सेल्स होते हैं।

अगर 'सेल थ्योरी' सच थी (वो वाकई में सच निकली) तो फिर मस्तिष्क भी 'सेल्स' का ही बना होगा?

जब 'सेल थ्योरी' स्थापित हो रही थी तभी 1938 में, एक पोलिश डाक्टर राबर्ट रेमाक (1815-1865) ने सूक्ष्मदर्शी के नीचे नर्वस का महत्वपूर्ण अध्ययन किया। उन्होंने पहली बार देखा कि नर्वस अंदर से पोली नहीं होती हैं। वैसे प्राचीन यूनानी उनको हमेशा से खोखला ही समझते आ रहे थे।

उसने दिखाया कि कुछ पतली नर्वस - जिन्हें सूक्ष्मदर्शी के बिना देखना असम्भव था के चारों ओर एक वसा (फैट) पदार्थ होता है। कुछ में ऐसा नहीं होता है। इस तेलयुक्त पदार्थ को 'माययूलिन शीथ' कहते हैं।

'माययूलिन शीथ' से ढंकी नर्वस देखने में सफेद होती हैं। जिनमें 'माययूलिन शीथ' नहीं होती वे नर्वस सिलेटी रंग की होती हैं। इसलिए हम मस्तिष्क में 'ग्रे-मैटर' (सिलेटी-पदार्थ) और 'व्हाइट-मैटर' (सफेद-पदार्थ) होने की बात करते हैं। मस्तिष्क की बाहरी सतह पर 'ग्रे-मैटर' और अंदर 'व्हाइट-मैटर' होता है। जबकि रीढ़ की हड्डी में इसका उल्टा होता है - बाहर सफेद और अंदर सिलेटी पदार्थ होता है।

उसी समय चेकोस्लोवाकिया का एक जीव-शास्त्री जान इवांगलिस्टा पूरकिनये (1787-1869) भी इसी प्रकार की खोजें कर रहा था। 1837 में उसने नर्व सेल्स का वर्णन लिखा। 'प्रोटोप्लाज्म' शब्द का उपयोग करने वाले वो पहले व्यक्ति थे। 'प्रोटोप्लाज्म' एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ होता है 'पहला आकार' और वो सेल के अंदर के पदार्थ का वर्णन करता है।

नर्वस सेल्स बड़े आकार के होते हैं और वो एक विशेष पदार्थ से घिरे होते हैं जो उन्हें सहारा देता है और उन्हें बांधे रखता है। इस पदार्थ को 'न्यूरो-ग्लिया'

या नर्वस का गोंद कहते हैं। 1854 में जर्मन डाक्टर रुडौल्फ कार्ल फिरचोव (1821-1902) ने दिखाया कि 'न्यूरो-ग्लिया' में 'ग्लायल-सेल्स' भी होते हैं जो नर्व सेल्स से छोटे होते हैं। इंसान के मस्तिष्क में 1000 करोड़ नर्व सेल्स और 9000 करोड़ 'ग्लायल-सेल्स' होते हैं।

पुरकिनजे ने यह भी दिखाया कि नर्व सेल्स अनियमित आकार के होते हैं। उनसे छोटे-छोटे रेशे चिपके होते हैं जो बाद में जाकर किसी पेड़ की टहनियों की भांति और छोटे-छोटे रेशों में बंट जाते हैं। इन रेशों या 'फाइबर्स' को 'डेंड्राइट' कहते हैं। ग्रीक में 'डेंड्राइट' का अर्थ पेड़ होता है।

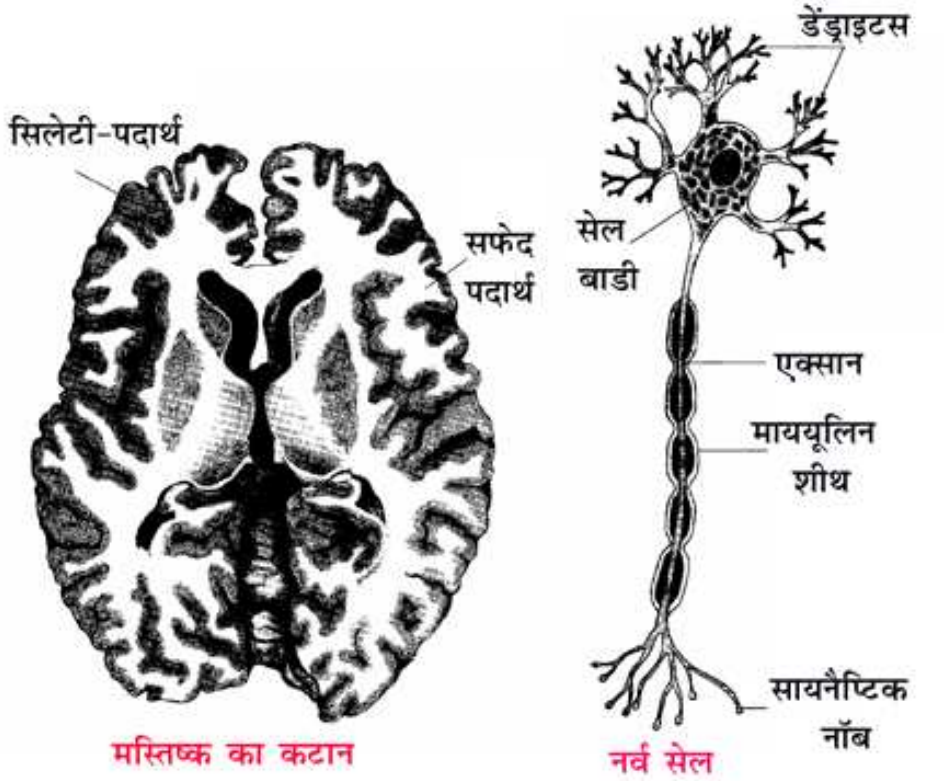

कुछ बहुत लम्बे रेशे होते हैं जिन्हें अब 'एक्सान' कहते हैं। 'एक्सान' ग्रीक शब्द 'एक्सिल' से आता है जिसका अर्थ लम्बी और पतली धुरी होता है। यह 'एक्सान' ही माययूलिन शीथ से घिरे होते हैं। इसका अर्थ हुआ कि ग्रे-मैटर लगभग पूरी तरह नर्व-सेल्स और ग्लायल-सेल्स का बना होता है जबकि व्हाइट-मैटर पूरी तरह एक्सान का बना होता है।

1849 में एक स्विस जीव-शास्त्री रुडौल्फ एल्बर्ट फॉन कोलिकर (1817-1905) ने दिखाया कि कुछ एक्सान निश्चित रूप से नर्व-सेल्स से जुड़े होते हैं।

1891 में जर्मन जीव-शास्त्री हेनरिच गौटिफ्रिड फॉन विल्हेल्म वैलडिइरहारिट्ज (1836-1921) ने दिखाया कि सभी एक्सान, नर्व-सेल्स से जुड़े होते हैं। उसने नर्व-सेल्स, डेंड्राइट और एक्सान के जोड़ को 'न्यूरान' नाम दिया जिसका उदगम ग्रीक शब्द 'नर्व' में है।

वैलडिइरहारिट्ज का मानना था कि न्यूरान का लम्बा एक्सान किसी रूप में अन्य न्यूरॉन्स की डेंड्राइटस से जुड़ा होता है। इस प्रकार नर्वस सिस्टम दरअसल न्यूरॉन्स का एक बहुत बड़ा जाल है। इसे 'न्यूरॉन थ्योरी' कहते हैं।

1873 में एक इतालवी जीवशास्त्री केमिलियो गोलजी (1843-1926) ने एक तरकीब द्वारा नर्व-सेल्स पर कुछ रासायनों से रंग लगाया (स्टेनिंग)। इससे सेल के अंदर कुछ छोटे ढांचे रंगीन हुए बाकी नहीं। इस तकनीक से गोलजी सेल्स के अंदर की कुछ महत्वपूर्ण बारीकियों का अध्ययन कर पाया, जिन्हें अन्य शोधकर्ता नहीं खोज पाए थे। वो अंत में दिखा पाया कि किसी एक न्यूरॉन के एक्सान दूसरे न्यूरॉन्स की डेंड्राइटस से नहीं जुड़ते हैं। उनके बीच में एक छोटा सी झिरी होती है। इस झिरी को 'सायनैप्स' कहते हैं (ग्रीक में इसका अर्थ 'जुड़ना' होता है)।

सायनैप्स

एक स्पैनिश जीव-शास्त्री सैंतियागो रैमन काहाल (1852-1934) ने गोलजी की 'स्टेनिंग-विधि' को और बेहतर बनाया। उसने अंततः न्यूरान थ्योरी की सत्यता को स्थापित किया।

4 नर्व इंपल्स (धक्का)

1826 में जर्मन जीवशास्त्री जोहानेस पीटर म्यूलर (1801-1858) ने यह दिखाया कि हरेक विशेष नर्व एक खास काम ही करती है। उदाहरण के लिए औपटिक-नर्व आंख से होकर मस्तिष्क तक जाती है। जब कोई प्रकाश किरण औपटिक-नर्व को उत्तेजित करती है तो वो उस संवेदना को मस्तिष्क तक लेकर जाती है और हमें प्रकाश किरण की अनुभूति होती है।

अब चाहें जो भी चीज - 'दाब' भी अगर औपटिक-नर्व को उत्तेजित करे तो उससे हमें प्रकाश किरण की अनुभूति होगी। इसीलिए आंख पर हल्का सा 'वार' होने पर आपको दिन में भी 'तारे' दिखाई देते देंगे।

उत्तेजनाएं नर्व पर किस प्रकार यात्रा करती हैं?

1800 तक लोग तारों में विद्युत कैसे यात्रा करती है यह समझ गए थे। क्या इसी प्रकार का विद्युत-करंट नर्व में भी बह सकता है?

अक्सर इंजिनियर बिजली बहने वाले तारों को रेशम या रबर से लपेटते थे। इससे तार कुचालक हो जाता था। इससे विद्युत 'लीक' नहीं होती थी और उपकरण शार्ट-सर्किट से सुरक्षित रहता था। एक्सान भी बिजली के तारों जैसे हैं जिन पर माययूलिन शीथ का कवच एक कुचालक का काम करता है। इससे विद्युत करंट की अवधारणा का जन्म होता है।

म्यूलर, नर्वस में विद्युत-करंट तो नहीं खोज पाया, पर ऐसा ही कुछ होगा उसकी यह मान्यता सही थी। कुछ नर्व-इंपल्स - पूरी नर्व को उत्तेजित करती हैं। म्यूलर, नर्व-इंपल्स की गति को मापने की चेष्टा करता रहा परन्तु 1830 में उसने यह प्रयास छोड़ दिया। उसे लगा कि नर्व-इंपल्स इतनी तेज गति से इतनी छोटी दूरी तय करती है इसलिए उसकी रफ्तार को मापना शायद असम्भव होगा।

यह म्यूलर की गलतफहमी थी। 1852 में म्यूलर जब जीवित था तभी उसके एक छात्र जर्मन जीव-शास्त्री हरमन लुडविग फॉन हेल्महुल्टज (1821-1894) ने इस गति को मापा।

इसके लिए हेल्महुल्टज ने मेंढ़क की माँसपेशी की एक नर्व को उत्तेजित किया। उत्तेजित करने से नर्व थोड़ा फड़की। जब हेल्महुल्टज ने माँसपेशी के बहुत करीब स्थित नर्व को उत्तेजित किया तो माँसपेशी झट से फड़की। फिर उसने माँसपेशी से सबसे दूर स्थित नर्व को उत्तेजित किया। इस बार माँसपेशी फड़की पर उसे एक क्षण का समय लगा।

हेल्महुल्टज ने इस समय को मापा और उससे नर्व-इंपल्स की स्पीड को ज्ञात किया। मेंढ़क की नर्व-इंपल्स 66 फीट प्रति सेकंड या 45 मील प्रति घंटे की रफ्तार से यात्रा करती है। मनुष्यों में नर्व-इंपल्स की गति 70 मील प्रति घंटा होती है।

इसी बीच एक अन्य जर्मन जीव-शास्त्री एमिल रेमोने (1818-1896) ने सूक्ष्म विद्युत करंट को मापने के कई उपकरणों का आविष्कार किया। 1845 में उसने दिखाया कि नर्वस में भी विद्युत-करंट होता है।

नर्वस की विद्युत, बिजली के तारों से कुछ भिन्न होती है। बिजली के तारों में विद्युत नर्वस की अपेक्षा 2500-गुना तेजी से बहती है। तारों में बहने वाली विद्युत किसी बैटरी या जेनेरेटर से पैदा होकर तारों में बहती है। परन्तु नर्वस को खुद विद्युत आवेश निमार्ण करना पड़ता है - पहले एक भाग में, फिर दूसरे में आदि। इस विद्युत-आवेश के बनने में समय लगता है। इसलिए नर्वस में धारा बिजली के तारों की अपेक्षा बहुत धीमी गति से बहती है।

1902 में ब्रिटिश जीव-वैज्ञानिक फ्रांसिस गौच (1879-1910) ने खोजा कि अगर किसी विशेष नर्व को बहुत धीमे से उत्तेजित किया जाता है तो अक्सर कुछ नहीं होता है। माँसपेशियों के जिन रेशों के साथ नर्व जुड़ी थी वो बिल्कुल हिली-डुली नहीं। नर्व को जोर से उत्तेजित करने पर एक बिन्दु पर नर्व-इम्पल्स चालू होती और माँसपेशी बहुत जोर से सिकुड़ती। यहां पर, कुछ-नहीं अथवा सब-कुछ वाली परिस्थिती देखने को मिली।

आप चाहें तो अपने हाथ को हल्के बल से थोड़ा सा, अथवा जोर लगाकर पूरी तरह मोड़ सकते हैं। यह इसलिए होता है क्योंकि हमारी माँसपेशी में बहुत सारे रेशे होते हैं। हरेक रेशा या पूरी तरह सिकुड़ता है अथवा बिल्कुल नहीं। और जितने अधिक रेशे सिकुड़ते हैं माँसपेशी उतनी ही ज्यादा और बलपूर्वक सिकुड़ती है।

वैज्ञानिक नर्व-इम्पल्स की ताकत और उसके बर्ताव का और अधिक बारीकी से अध्ययन करते रहे। अंत में दो ब्रिटिश जीव-वैज्ञानिक ऐलन लायड हौजकिन (जन्म 1914) और एंडरू फीलडिंग (जन्म 1917) जलजीव स्किविड के मोटे एक्सान पर शोध करने लगे। हौजकिन और फीलडिंग एक्सान में कुछ नाजुक उपकरण घुसाने में सफल हुए। 1952 तक उन्होंने एक पद्धति विकसित की जिसमें एक्सान के अंदर विद्युत आवेश के अणु (आयन्स) अंदर-बाहर जाकर एक विद्युत आवेश पैदा कर सकते थे।

1924 में एक जर्मन डाक्टर हैंस बर्जर (1873-1941) ने एक पद्धति खोजी जिससे कि मस्तिष्क के सेल्स (कोशिकाओं) में विद्युत को मापा जा सके। इसमें खोपड़ी पर तमाम तार लगाए गए। फिर मस्तिष्क में बहती विद्युत धारा को एक सुई के जरिए एक कागज पर एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा के रूप में ट्रेस करना सम्भव हुआ।

तरंगे बदलती रहतीं थीं। तरंगों का बदलना मरीज की आंखे खुली/बंद हैं, वो जागा/सोया है इस बात पर निर्भर करता था। छोटे बदलावों को इन तरंगों द्वारा समझना मुश्किल था। पर अगर ब्रेन-ट्यूमर जैसे गम्भीर रोग हो, या मिर्गी के दौरे की बीमारी को पकड़ पाना आसान था।

इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफी

मस्तिष्क के अंदर विद्युत धाराओं को मापने की विधि इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफी या संक्षिप्त में ई-ई-सी के नाम से जानी जाती है। इसका उद्‌गम एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है 'मस्तिष्क की विद्युत लिखाई'।

नर्व इम्पल्स न्यूरान के एक-सिरे से दूसरे तक यात्रा कर सकती है। वो डेंड्राइटस से, नर्व से गुजरती हुई एक्सान के अंतिम छोर तक जाती है। जब सायनैप्स - एक्सान और दूसरे न्यूरान की डेंड्राइट के बीच की छोटी झिरी आती है, तब नर्व इम्पल्स सायनेप्स को कैसे लांघती है?

कुछ वैज्ञानिकों ने सोचा कि नर्व इम्पल्स कोई रासायन पैदा करती होगी। इस रासायन के कारण ही नर्व इम्पल्स दूसरे न्यूरान तक पहुंचती होगी। पर इसका प्रमाण क्या था?

एक जर्मन-अमरीकी जीव-वैज्ञानिक, ऑटो लौयवी (1873-1961) इसी समस्या पर शोध कर रहे थे। 1921 में एक रात वो 3 बजे उठे क्योंकि उनके दिमाग में एक प्रयोग का विचार आया। उन्होंने उठकर उसे अपनी कॉपी में दर्ज किया। सुबह उठकर रात को आया विचार उन्हें बिल्कुल याद नहीं रहा और जो कुछ उन्होंने नींद में लिखा था उसे भी वो पढ़ नहीं पाए।

अगली रात वो फिर 3 बजे उठे और उन्होंने प्रयोग को याद करने की कोशिश की। इस बार उन्होंने मौका नहीं गंवाया और प्रयोग करने सीधे प्रयोगशाला पहुंचे।

उन्होंने एक मेंढक के हृदय को कुछ रासायनों से भरा और उस पर लगातार धीमी मार करते रहे। इस हृदय से एक नर्व जुड़ी थी जो उत्तेजित होने पर हृदय की गति को धीमा करती थी। लौयवी ने इस नर्व को उत्तेजित किया और उससे हृदय के स्पंदन की गति धीमी हुई।

लौयवी ने फिर हृदय से रासायन मिश्रण को निकालकर दूसरे मेंढक के हृदय में डाला। इससे दूसरे मेंढ़क के हृदय की गति एकदम धीमी हो गई जबकि वहां किसी भी नर्व को उत्तेजित नहीं किया गया था। इससे सिद्ध होता था कि नर्व इम्पल्स ने पहले हृदय के मिश्रण में एक विशेष रासायन का निर्माण किया होगा, जिसने दूसरे हृदय में अपना कमाल दिखाया। सुबह 5 बजे तक लौयवी ने अपनी बात सिद्ध कर दी थी।

एक अंग्रेज जीव-वैज्ञानिक हेनरी हैलेट डेल (1875-1968) ने फफूंद से एक रासायन निकाला था जिसका नाम 'इरगाट' था। इससे माँसपेशियां बिल्कुल नर्व इम्पल्स जैसे ही सिकुड़ती थीं। 1914 में वैज्ञानिकों ने इस रासायन को ऐसीटीलकोहलीन का नाम दिया। जब डेल ने लौयवी के प्रयोग के बारे में पढ़ा तब उसे लगा कहीं नर्व इम्पल्स ने सायनैप्स में ऐसीटीलकोहलीन तो पैदा नहीं की थी? 1929 में वो इसके स्पष्ट प्रमाण दे पाया।

नर्व कुछ अन्य रासायन भी पैदा करते हैं जो सायनैप्स को लांघ सकते हैं। बाद में इन रासायनों की प्रकृति पर काफी शोध हुआ।

क्या मस्तिष्क के भिन्न भागों की अलग-अलग विशेषताएं थीं? कुछ लोगों को ऐसा लगा। एक जर्मन डाक्टर फ्रांज जोजेफ गैल (1758-1828) को ऐसा लगा। उसके अनुसार मस्तिष्क का कोई खास भाग हास्य-विनोद, और दूसरा कोई भाग आपराधिक भावनाओं को नियंत्रित करता होगा। उसे लगा कि खोपड़ी पर उभरे हुए भाग (गूमड़े), मस्तिष्क के नीचे अतिरिक्त वृद्धि की ओर इशारा करते हैं। जिन स्थानों पर गूमड़ हैं उनसे व्यक्ति की बुद्धिमानी और उसका स्वभाव जाना जा सकता था।

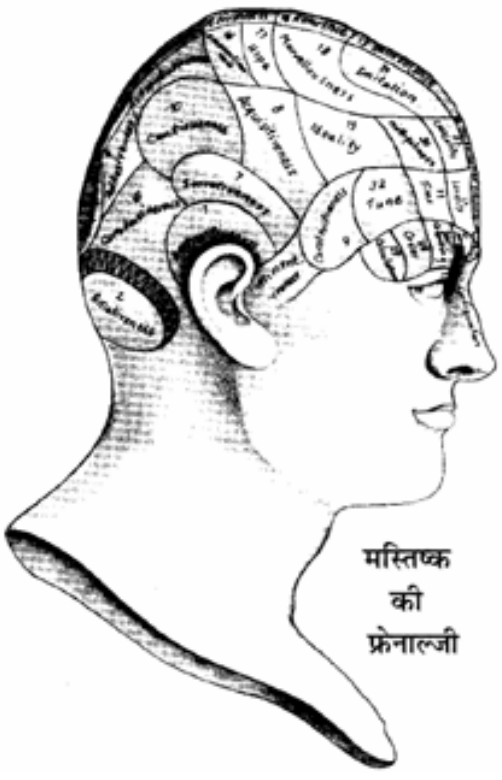
मस्तिष्क की फ्रेनाल्जी

किसी व्यक्ति के स्वभाव को जानने की कला को 'फ्रेनाल्जी' (ग्रीक शब्द दिमाग को पढ़ना) कहा जाता है। कुछ समय तक 'फ्रेनाल्जी' काफी लोकप्रिय हुई पर असल में वो बिल्कुल बकवास थी - जन्मकुंडली देखने जैसी थी।

गैल के विचारों ने अन्य वैज्ञानिकों को इस समस्या पर काम करने के लिए प्रेरित किया। वो मस्तिष्क के कुछ हिस्सों को निकाल देते, क्षति पहुंचाते या उन्हें उत्तेजित करते और फिर शरीर पर उसके असर को देखते। 1870 में दो जर्मन डाक्टर्स जूलियस एडुआर्ड हिटजिग (1838–1907) और गुस्ताव फ्रिट्ज (1838–1927) ने कुत्तों के ऊपर शोध किया। उन्होंने उनके मस्तिष्क के कुछ भागों को उत्तेजित किया और देखा कि उनसे कौन सी माँसपेशियां सिकुड़ीं या कमजोर हुईं।

इस कार्य को एक स्काटिश डाक्टर डेविड फेरियर (1843–1928) ने जारी रखा। 1876 में उसने मस्तिष्क का एक मोटा–मोटा नक्शा बनाया। उसमें मस्तिष्क का कौन सा भाग शरीर के किस अंग को नियंत्रित करता है इसका उल्लेख था। बीच में एक पट्टी थी जो विभिन्न माँसपेशियों को नियंत्रित करती थी और मस्तिष्क के पीछे की ओर जहां आंख से उत्तेजनाएं आती थीं। मस्तिष्क के अन्य भागों में शरीर के अन्य हिस्सों से उत्तेजनाएं आती थीं।

मस्तिष्क के इस नक्शे को एक अंग्रेज डाक्टर चार्ल्स शेरिंगटन (1857–1952) ने संशोधित किया।

मस्तिष्क की सतह का केवल छोटा सा भाग ही माँसपेशियों और अन्य इंद्रियों का नियंत्रण करता था। इससे लोगों को लगा जैसे मस्तिष्क का बहुत बहुत बड़ा भाग उपयोग ही नहीं होता है। पर यह धारणा गलत थी। सम्पूर्ण मस्तिष्क का उपयोग होता है। मस्तिष्क के जो भाग माँसपेशियों और अन्य इंद्रियों का नियंत्रण नहीं करते वे याददाश्त, निर्णय, विचारों और सोच की क्षमता के काम आते हैं।

मस्तिष्क का मुख्य भाग – सेरिबिरम पूरे शरीर के नियंत्रण का काम नहीं करता है। सेरिबिरम की जरूरत निर्णय लेते समय पड़ती है। पर कभी–कभी आप निर्णय का इंतजार नहीं कर सकते हैं। अगर आप गलती से किसी गर्म तवे को

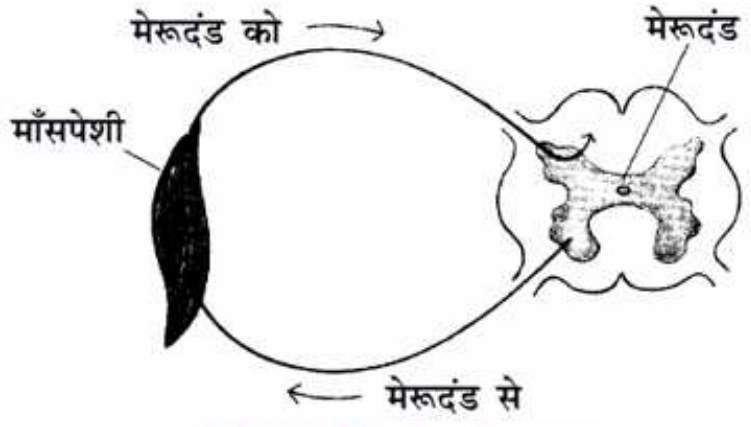

प्रतिक्रिया (रीफ्लेक्स ऍक्शन)

छुएं तब आप हाथ हटाने के निर्णय का इंतजार नहीं कर सकते हैं। इतनी देर में आपका हाथ बुरी तरह जल जाएगा। पर वास्तविकता में बिना सोचे और निर्णय लिए ही आपका हाथ गर्म तवे से झट से अलग हो जाता है।

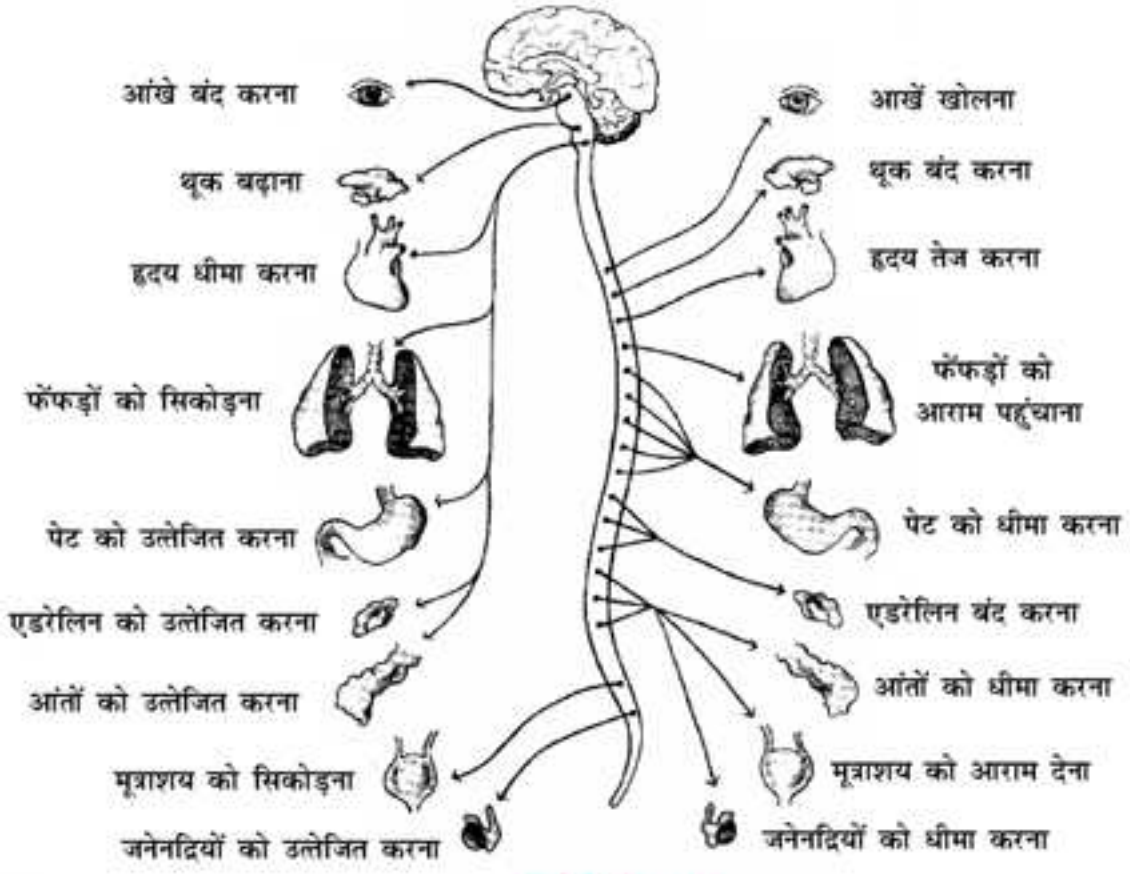

नर्वस सिस्टम

इस प्रकार का शोध सबसे पहले ब्रिटिश डाक्टर मार्शल हॉल (1790-1857) ने किया। 1832 में उन्होंने जल्दी होने वाली इमरजेंसी प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया। उन्होंने इन्हें 'रीफलेक्स ऍक्शन' (उद्गम ग्रीक शब्द - अर्थ 'पीछे की ओर मुड़ना')। अनुभूति एक नर्व से यात्रा करती है और दूसरी नर्व तत्काल जरूरी माँसपेशी को चलाती है। हॉल के अनुसार यह 'रीफलेक्स ऍक्शन' स्वत: नर्वस द्वारा नियंत्रित होते हैं और वे रीढ़ की हड्डी में लगातार आते-जाते हैं।

शेरिंगटन जिसका उल्लेख पहले हुआ उसने अन्य प्रकार के 'रीफलेक्स ऍक्शन' का अध्ययन किया। उसने दिखाया कि वैसे नर्वस, मस्तिष्क से माँसपेशियों तक जाकर उन्हें उत्तेजित करके सिकोड़ती हैं। पर उनके अलावा भी अन्य नर्वस होती हैं जो सीधे माँसपेशियों से मस्तिष्क तक जाती हैं। इन दूसरी नर्वस के कारण मस्तिष्क को प्रत्येक माँसपेशी की स्थिति और उसके सिकुड़ने का ज्ञान होता है।

अगर आप खड़े होकर एक ओर झुक रहे हों तब आपके मस्तिष्क को यह बात तुरन्त मालूम पड़ जाएगी और वो किसी विशिष्ट माँसपेशी को सिकोड़ कर आपको सीधा रखने का प्रयास करेगा। खड़ा रहते समय आप अनजाने इस संतुलन का लगातार समायोजन करते रहते हैं। इसीलिए बहुत देर तक खड़े रहने के बाद आप थक जाते हैं जबकि आपने इस बीच कोई मेहनत का काम नहीं किया।

कुछ अन्य 'रीफलेक्स ऍक्शन' हैं जो आपकी सांस को नियंत्रित करते हैं। जब आप किसी वस्तु को उठाते हैं तो आपके हाथ की माँसपेशियों के लगातार समायोजन के कारण आपका हाथ बहुत दूर नहीं जाता है। यह सब 'रीफलेक्स ऍक्शन' सेरिबेलम द्वारा नियंत्रित होते हैं।

5 दिशा और नींद

मनुष्य के शरीर में सममिति (सिमेट्री) होती है। इसका मतलब उसके बाएं और दाएं भाग एक-दूसरे के दपर्ण प्रतिबिम्ब होते हैं। हमारे दो कान, दो आंखें, दो नथुने, दो हाथ और दो पैर होते हैं। शरीर के अंदर हमारे दो फेंफड़े और दो गुरदे (किडनी) होती हैं।

परन्तु मस्तिष्क का क्या हाल है? हमारा एक ही मस्तिष्क है और उसके नीचे एक ही मेरूदंड (स्पायनल कार्ड) है। और यह मेरूदंड शरीर की रीढ़ की हड्डी में होता है।

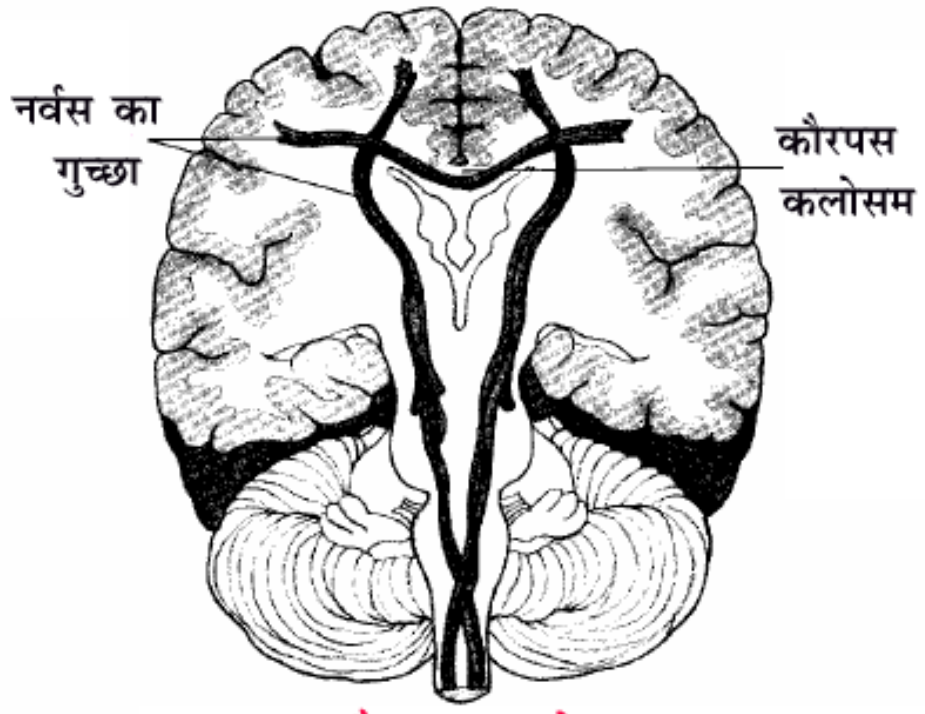

कौरपस कलोसम

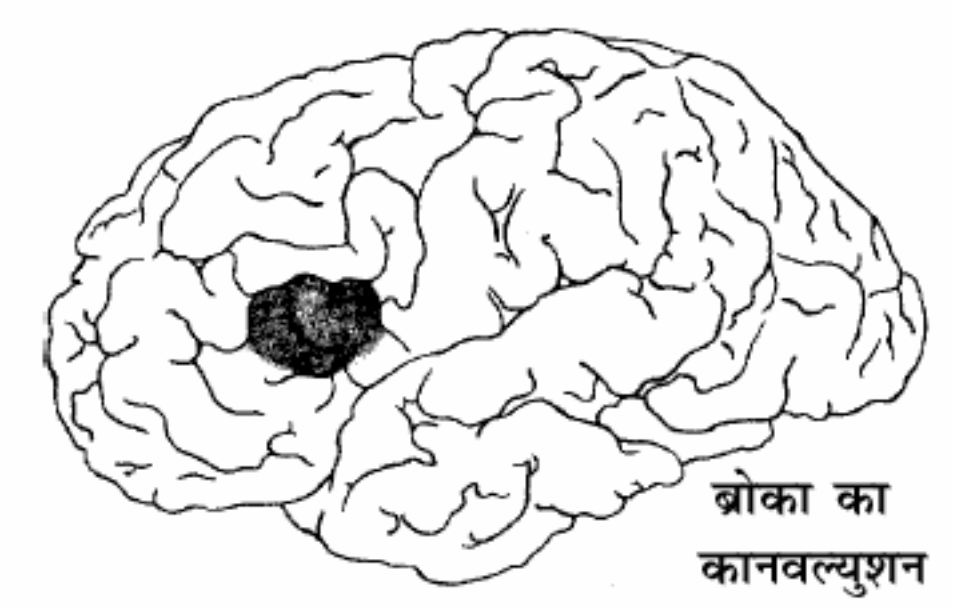

अगर आप मस्तिष्क का अवलोकन करें तो आप उसमें दो हिस्से - बाएं और दाएं भाग पाएंगे जो तमाम नर्वस के गुच्छों से जुड़े होंगे। इस जोड़ को कौरपस कलोसम कहते हैं। अगर आप किसी अखरोट को तोड़ेंगे तो आपको उसमें भी वैसा ही ढांचा दिखेगा।

हमारे मस्तिष्क के दो बिल्कुल एक-जैसे भाग नहीं हैं। इसके प्रमाण 1861 में मिले। एक फ्रेंच डाक्टर पियरे पॉल ब्रोका (1824-1880) का एक मरीज बिल्कुल बोल नहीं पाता था। बताए गए शब्दों को वो समझता था पर उन शब्दों को वो बोल नहीं पाता था। वो अपने चेहरे के हावभाव और हाथों के इशारों से बुद्धिमानी के उत्तर देता था। पर वो बोल नहीं पाता था। इस स्थिति को अफेजिया (शब्दविहीन) कहते हैं।

मरीज की मृत्यु के बाद ब्रोका ने उसके मस्तिष्क का मुआयना किया और उसके मस्तिष्क में बाएं ओर चोट पाई। आज भी मस्तिष्क के इस भाग को ब्रोका का कानवल्युशन कहते हैं।

ब्रोका के अनुसार यह मस्तिष्क का वो भाग था जो व्यक्ति की बोलने की क्षमता को नियंत्रित करता था। वो होंठ, गाल, जीभ, गले की तेजी से बदलती स्थितियों को नियंत्रित करता था जिसे हम बोलना कहते हैं। यह भाग मस्तिष्क के सिर्फ बाएं भाग में स्थित था। अगर ऐसा ही केंद्र दाईं ओर भी होता तो बाएं वाले हिस्से को चोट लगने के बाद यह काम दायां हिस्से करने लगता।

इसमें एक अंतर है। मस्तिष्क का बांया भाग बोलने की क्षमता को नियंत्रित करता है जबकि दायां भाग ऐसा बिल्कुल नहीं करता। पहले इसको लेकर कई विवाद हुए पर अंत में ब्रोका का कथन सही पाया गया।

(बनमानुष और गोरिल्लों के मस्तिष्क भी मनुष्य जैसे ही होते हैं, पर वो बहुत छोटे होते हैं। उनमें ब्रोका का केंद्र नहीं होता इसलिए इन जानवरों को बोलना नहीं सिखाया जा सकता है। वैसे उन्हें चिन्ह-भाषा (साइन लैन्गुएज) द्वारा संप्रेषण सिखाया जा सकता है।)

नींद की जरूरत आज भी एक पहेली है। नींद सिर्फ आराम करने के लिए नहीं होती है। आप लेटकर आंखें खोले भी आराम कर सकते हैं। असल में आप सोते समय अधिक सक्रिय होते हैं, आराम करते समय कम सक्रिय होते हैं। सोते समय आप अक्सर करवटें लेते हैं और कभी हाथ-पैर भी हिलाते रहते हैं।

फिर भी आराम करना सोने का पर्याय नहीं है। आंखे खोल कर आराम करते हुए भी आपको नींद की गहरी जरूरत होगी। और बहुत देर तक जागे रहने के बाद आप हैल्यूसिटेन करने लगेंगे - यानि आपको भ्रम होने लगेगा। नींद की कमी से आप जल्दी मरेंगे, पानी के अभाव में आप अधिक देर तक जिएंगे।

और नींद में रीम-नींद सबसे आवश्यक होती है। अगर किसी व्यक्ति को रीम-नींद से पहले जानबूझ कर बार-बार उठाया जाए तो अगली रात वो और गहरा सोएगा जैसे कि वो पिछली रात के अभाव को पूरा कर रहा हो।

इससे लगेगा कि सपने देखना, सोने की अपेक्षा ज्यादा जरूरी है। पर क्यों?

इसका उत्तर किसी को नहीं पता। मेरा अपना खुद का मानना है कि मनुष्य का मस्तिष्क इतना जटिल है कि उसे दिन भर के विचारों को त्यागने के लिए कुछ आराम की जरूरत होती है। शरीर इस कार्य को सपने देखकर सम्पन्न सकता है और इस प्रकार मानसिक 'कचरे' को त्याग सकता है। यह एक तरह की मानसिक सफाई है जिससे कि अगल दिन मस्तिष्क नए विचारों और क्रियाओं के लिए खुद को तरोताजा कर सके।

सेरेब्रल कारटेक्स से निकले नर्वस के गुच्छे

मैं फिर इस बात को दोहरा रहा हूं कि किसी को इसका सही उत्तर नहीं पता है।

असल में कई शताब्दियों के अध्ययन के बाद भी हम मस्तिष्क के बारे में बहुत कम ही जानते हैं। मनुष्य के शरीर का सबसे जटिल अंग मस्तिष्क है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। असल में बृहमांड में पाई हरेक जीवित या मृत वस्तु में हमारा मस्तिष्क सबसे जटिल है।

मनुष्य का मस्तिष्क इंसानियत के लिए एक बहुत बड़ी उम्मीद है। क्योंकि मस्तिष्क के जरिए ही हम मौलिक विचार सोच सकते हैं, प्रेम और मानवीय भावनाएं विकसित कर सकते हैं। मस्तिष्क के जरिए ही हम पुस्तकें लिखते हैं एवं संगीत और कला की रचना करते हैं और इंसानियत के सामने मुंह बाए खड़ी बड़ी विशाल समस्याओं का हल खोजते हैं।

मनुष्य का मस्तिष्क शायद बहुत खतरनाक वस्तु भी है। मस्तिष्क से ही हम वे अंधविश्वास रचते हैं जो हमें गलत दिशा में ले जाते हैं। मस्तिष्क के जरिए ही हम भय और अन्य लोगों से नफरत करना सीखते हैं जो क्रूरता, अपराध और युद्ध को जन्म देता है।

हम सिर्फ यह आशा कर सकते हैं कि मस्तिष्क के ऊपर शोध और अध्ययन से हम लोगों को अच्छे विचारों की ओर उन्मुख कर पाएंगे और युद्ध, घृणा आदि हानिकारक पक्षों से उन्हें बचा पाएंगे। तब शायद हमारी दुनिया आज के मुकाबले ज्यादा बेहतर, सुरक्षित, संवेदनशील और दयालू बन पाए।

अंत 04 मई 2014